नईदुनिया

संपादकीय

नफे सिंह की हत्या पर उठे सवाल

हरियाणा के बहादुरगढ़ में इंडियन नेशनल लोक दल के प्रदेश अध्यक्ष नफे सिंह राठी की हत्या से एक बार फिर यही जाहिर हुआ है कि अपराधियों का मनोबल इस कदर बढ़ा हुआ है कि वे किसी नेता की हत्या करने से भी नहीं हिचक रहे। कई बार घटना की प्रकृति से भी पता चलता है कि हमलावर कानून से कितने बेखौफ हैं। इसका अंदाजा इससे लगाया जा सकता है कि कार से पीछा करके अपराधियों ने सरेआम ताबड़तोड़ गोलियां चलाईं, जिसमें नफे सिंह की जान चली गई और उनके कई सुरक्षाकर्मी भी घायल हो गए। घायल हुए एक अन्य कार्यकर्ता को भी नहीं बचाया जा सका।

हालांकि इस हत्याकांड की जिम्मेदारी किसी ने नहीं ली है, मगर अब घटना के बाद एक रस्म की तरह पुलिस ने आरोपियों को जल्दी पकड़ लेने का भरोसा दिया। विडंबना है कि ऐसे आश्वासन अगर पूरे हो भी जाते हैं तो अगली घटनाओं को रोकने के लिए सबक नहीं बन पाते। सवाल है कि ऐसी नौबत आने से पहले सरकार और प्रशासन की ओर से समय पर ऐसे कदम क्यों नहीं उठाए जाते, जिससे अपराधों पर लगाम लगाई जा सके!

ऐसी घटनाओं में एक आम आशंका यह उभरती है कि क्या इसके पीछे राजनीतिक खींचतान, आपसी रंजिश या फिर महत्त्वाकांक्षाओं का टकराव मुख्य कारण है। यह नफे सिंह राठी की हत्या के संदर्भ में अभी स्पष्ट नहीं हुआ है, मगर उनके बेटे ने इसके पीछे राजनीतिक साजिश होने का दावा किया और कहा कि ऐसे लोग हैं जो उनके पिता को विधायक के रूप में नहीं देखना चाहते थे।

इस मामले में प्रशासनिक तंत्र की कोताही इस रूप में सामने आई है कि खबरों के मुताबिक राठी पर पहले भी हमले हुए थे और लगातार धमकियां दी जा रही थीं। इसके बावजूद सरकार की ओर से उन्हें सुरक्षा मुहैया नहीं कराई गई थी। अगर इस अपराध की साजिश पहले रची गई थी, तो प्रशासन इसे भांपने में कैसे नाकाम रहा यह संभव है कि राजनीतिक महत्त्वाकांक्षा या आपसी रंजिश के तहत एक नेता की हत्या कर दी गई हो, लेकिन यह साफ है कि अगर सरकार ने समय पर जरूरी कदम उठाए होते, तो इस वारदात को रोका जा सकता था।

क्यों यूपी लोकसभा चुनाव में भरेगा भाजपा की झोली..?

राजनीति

-आर.के. सिन्हा

अब कुछ हफ्तों बाद ही देश में लोकसभा चुनाव की घोषणा हो जाएगी। पर उत्तर प्रदेश (यूपी) को छोड़कर देश के लगभग सभी राज्यों की लोकसभा सीटों के लिए कांटे की टक्कर होने की संभावना है । लेकिन, उत्तर प्रदेश की सभी 80 सीटों पर नतीजे कुल मिलाकर लगभग तय हैं। यह बात उत्तर प्रदेश के शिखर सियासी नेताओं से लेकर आम इंसान तक को भलीभांति पता है। कभी जंगलराज, भाई-भतीजावाद, भ्रष्टाचार से जूझने वाला यूपी अब भारी-भरकम मोटा निवेश भी खींच रहा है। सात साल पहले तक तो यूपी की गिनती बीमारह्न राज्यों में होती थी, लोग मजाक में यूपी को उल्टा प्रदेश भी कहते थे । लेकिन, आज यूपी की पहचान देश के खेलों में बेहतर प्रदर्शन करने वाले राज्य के रूप में भी होने लगी है। यूपी आज विकास की असीमित संभावनाओं के प्रदेश के रूप में स्थापित हो चुका है। यूपी देश की जीडीपी में हिस्सेदारी के मामले में महाराष्ट्र के बाद दूसरे नंबर पर है।

देश में सर्वाधिक जीएसटी पंजीकृत व्यापारियों की संख्या के मामले में भी आज यूपी अव्वल है। राज्य में डिजिटल लेनदेन में एक साल में तीन गुना की बढ़ोतरी हुई है। यही नहीं राज्य में डी-मैट खातों की संख्या में भी सकारात्मक बढ़ोतरी हुई है। आज अगर यूपी में चौतरफा विकास हो रहा है तो इसका मुख्य श्रेय मुख्यमंत्री योगी आदित्यनाथ को ही जाता है। देश में यूपी की सियासी अहमियत निर्विवाद है। यहां पर भाजपा का प्रदर्शन लगातार सुधर ही रहा है। पिछले विधानसभा चुनाव में भाजपा ने अपनी जीत को दोहराया ही नहीं है, वह लगातार विपक्ष की राजनीतिक जमीन को कमजोर भी कर रही है। कभी मंडल और कमंडल की राजनीति का गढ़ रहा यह प्रदेश मंदिर का घंटा और सख्त कानून व्यवस्था का डंडा एक साथ बजा रहा है। यूपी में आगामी लोकसभा चुनाव में विपक्ष के लिए कोई बहुत अवसर नहीं हैं।

योगी आदित्यनाथ की अगुवाई में यूपी भाजपा का अभेद्य किला बनकर उभरा है ।

2019 में हुए पिछले लोकसभा चुनाव में भाजपा ने सूबे की 80 में से 64 सीटें अकेले दम पर जीत ली थीं। वर्ष 2022 में हुए विधानसभा चुनाव में भी भाजपा ने अकेले दम पर उत्तर प्रदेश विधानसभा की 403 सीटों में से 225 सीटें जीत कर सत्ता में धमाकेदार वापसी की। अपने सहयोगियों के साथ भाजपा की सीटों का आंकड़ा 272 तक पहुंच गया। इस जीत ने योगी आदित्यनाथ की लोकप्रियता को एक प्रकार से प्रतिष्ठित कर दिया। बेशक अब लोकसभा चुनाव में भी यूपी भरेगा भाजपा की झोली।

योगी आदित्यनाथ ने हाल ही में यूपी का नया फुल फॉर्म भी बताया। वे कहते हैं कि यूपी का मतलब है अनलिमिटेड पोटेंशियल। बीते दिनों ग्लोबल इन्वेस्टर्स समिट 2024 के ग्राउंड ब्रेकिंग सेरेमनी के दौरान मुख्यमंत्री योगी के अलावा प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी भी लखनऊ में थे। इस दौरान योगी आदित्यनाथ ने कहा, देश और दुनिया के उद्योग जगत ने हम पर और हमारी नीतियों पर विश्वास जताया। उत्तर प्रदेश को अबतक लगभग 40 लाख करोड़ के निवेश प्राप्त हो चुके हैं और आते ही चले जा रहे हैं । इन्हीं प्रयासों को धरातल पर उतारने का आज उत्सव है। नया उत्तर प्रदेश उत्तम प्रदेश से अब उद्यम प्रदेश बनकर भारत के ग्रोथ इंजन के रूप में विकसित उत्तर प्रदेश बनने की ओर अग्रसर है। पिछले सात वर्षों में यूपी में निवेशकों के लिए अनुकूल वातावरण बनाने की दिशा में कई प्रयास किए गए हैं।

यूपी पर नजर रखने वालों को पता है कि राज्य में निवेश तो आ ही रहा है। साथ ही सरकार की तरफ से यह भी कोशिश हो रही है ताकि कभी अपनी कपड़ा मिलों और मजदूरों के लिए मशहूर रहे कानपुर को फिर से उसका पुराना गौरव मिल जाए। कानपुर में आईटी सेक्टर के अलावा इलेक्ट्रानिक सामान और ऑटोमोबाइल सेक्टर से जुड़े उत्पादों का उत्पादन करने की पर्याप्त संभावनाएं हैं। कानपुर से देश के उत्तर, पूर्व तथा पश्चिम राज्यों के बाजारों में पहुंचने की सुविधा है। कानपुर में ऑटो और ऑ पार्ट्स की अनेक इकाइयां खड़ी हो सकती हैं। चूंकि राज्य सरकार अपने यहां आने वाले निवेशकों को टैक्स में भी छूट दे रही है, इसलिए कानपुर में निजी क्षेत्र के निवेश का होना तय है। गुस्ताखी माफ, कुछ साल पहले तक किसने सोचा था कि यूपी खेलों के क्षेत्र में भी अपनी पहचान बनाने लगेगा। जरा याद करें चीन के हांगझोऊ शहर में हुए एशियाई खेलों को। भारत के पदकों का शतक पूरा कराने में उत्तर प्रदेश के खिलाड़ियों का अहम योगदान रहा है। एशियाई खेलों के महाकुंभ में पहली बार यूपी से कुल 36 एथलीटों ने अपनी चमक दिखाई।

इन खिलाड़ियों ने सात स्वर्ण, आठ रजत और आठ कांस्य पदक जीतकर इतिहास रच दिया। यह पहला मौका था जब यूपी के खिलाड़ियों की झोली में इतने सारे पदक आए हों। इससे पहले 2018 के जकार्ता और 2014 के इंचियॉन (दक्षिण कोरिया) में उत्तर प्रदेश के खिलाड़ियों ने 11-11 पदक ही जीते थे। उत्तर प्रदेश की खेल राजधानी के नाम से प्रसिद्ध मेरठ जिले के खिलाड़ियों ने सबसे चौंकाने वाला प्रदर्शन किया। एशियाई खेलों में पश्चिमी उत्तर प्रदेश के 13 एथलीटों ने भारत का प्रतिनिधित्व किया। इनमें से छह मेरठ जिले से हैं और चार ने दो स्वर्ण सहित पांच पदक जीते हैं। खेलों में यूपी के बढ़ते कदम साफ संकेत हैं कि राज्य को अब विकास का रास्ता मिल गया है।

जिस राज्य में खेलों का स्तर सुधर रहा हो, समझ लें कि उस राज्य का विकास हो रहा है। जिस यूपी से कुछ साल पहले तक कोई सुकून भरी खबर आती ही नहीं थी वहां से सकारात्मक खबरों का आना सुखद है। यूपी से अब दंगा-फसाद या गैंगवार की खबरें नहीं आती। अब वहां के सरकारी दफ्तरों में काहिल बाबुओं के लिए कोई जगह नहीं बची है। यूपी की विकास यात्रा से पड़ोसी बिहार को भी सबक लेना होगा। तो अगर यूपी बदल रहा है तो साफ है कि वहां की जनता के चेहरे पर खुशी को पढ़ा जा सकता है। इस बदलाव के पीछे योगी आदित्यनाथ का कुशल नेतृत्व है। बदलता-आगे बढ़ता यूपी अपना फैसला लोकसभा चुनाव के वक्त दे देगा। हालांकि उस नतीजे का सबको पता है।

शीर्ष अदालत के फैसले से रोशन लोकतंत्र

कोर्टयार्ड

-अशोक लवासा

अदालतें न्याय देने के लिए बनी हैं। कई मर्तबा, वे इस ढंग से न्याय करती हैं कि आमतौर पर उनके साथ लगाया जाने वाला 'माननीय' शब्द सार्थक हो उठता है। इस बात पर लगभग सभी सहमत हैं कि चंडीगढ़ मेयर चुनाव मामले में आए सर्वोच्च न्यायालय के फैसले से लोगों का विश्वास फिर से लौटा है। जिस ढंग से न्यायाधीशों ने इस प्रसंग में पड़ताल की और आदेश सुनाया, वह असाधारण और चौंकाने वाला था। चुनाव अधिकारी अनिल मसीह का अनुचित आचरण भी कम नाटकीय और वाहियात न था, और दुर्भाग्यवश खतरा यह है कि कहीं यह चलन आम न हो जाए।

जैसा कि ज्ञात है, यह प्रसंग मतपत्रों से छेड़छाड़ कर निरस्त करने का है। हालांकि, इस मामले के केंद्रबिंदु में कुछ लोगों के लिए यह नमोशी का बायस है तो बहुतों के लिए व्यवस्था पर से भरोसा उठना। अदालत ने एक ही झटके में लोगों का यकीन दुबारा कायम कर तो दिया है, लेकिन केवल न्यायपालिका पर। न्यायालय ने उनको भी आईना दिखाया है जो व्यवस्था में मनमर्जी चाहते हैं लेकिन अवश्य ही उनको नहीं, जो पर्दे के पीछे रहकर अपना चेहरा बचाने की फिराक में थे। इस बार मुख बेशक मसीह का है किंतु कभी यह हर्षद मेहता का तो कभी अब्दुल करीम तेलगी का रहा, जो कि दुनिया को दिखाता है कि हमारी व्यवस्था में सड़न कितनी गहरी है, और इसके लिए हमें उसका (मसीह का) धन्यवाद करना होगा। हालांकि, एक मसीह के बरअक्स बहुतों पर ध्यान नहीं गया, भले ही उन्होंने व्यवस्था को इतना नुकसान पहुंचाया जिसकी भरपाई संभव नहीं।

कुछ लोगों ने इस प्रसंग को 'इलेक्ट्रॉनिक वोटिंग मशीन बनाम मतपत्र में कौन बेहतर' का पुट देने की कोशिश की है, यह कहते हुए कि ईवीएम होती तो मतपत्र की तरह गड़बड़ संभव न थी। लेकिन मतपत्र के मामले में, गड़बड़ी को पकड़ा तो जा सकता है जबकि जिन्हें ईवीएम पर शक है, उनके मुताबिक ईवीएम में हेराफेरी को पकड़ना मुश्किल है। इसका यह अर्थ नहीं कि हम पुन: मतपत्र वाले काल में लौट जाएं और ईवीएम के उपयोग से हासिल हुई दक्षता से खुद को महरूम करें। हालांकि इसका मतलब यह भी नहीं कि ईवीएम को लेकर जो शक-शुबहा हैं, उन्हें दूर न किया जाए। यह सार्वजनिक बहस का अलग से विषय है, जिसको लेकर मामला सर्वोच्च न्यायलय के सम्मुख भी है। मसीह वाले प्रसंग में, सर्वोच्च न्यायालय ने रिवायती लंबी प्रक्रिया न अपनाकर त्वरित न्याय दिया है। खंडपीठ ने सबके सामने पड़ताल की और प्रस्तुत सबूतों के आधार पर अपेक्षाकृत सरल इस मामले में सत्य को छांट लिया। चुनाव दुबारा से करवाना न्यायोचित न होता, खासकर जब विवाद चुनाव अधिकारी द्वारा कुछ मतपत्रों को बिगाड़ने तक सीमित था और जिसके लिए अकाट्य प्रमाण उपलब्ध था। अदालत ने चुनाव अधिकारी द्वारा किए कृत्य को निरस्त करके और विवादित मतपत्रों को वैध ठहराते हुए, चुनाव परिणाम की घोषणा करवाकर सही किया है। ईवीएम से पूर्व काल में चुनाव अधिकारी गणना से पहले, मतपत्रों की वैधता तय करने में, इसी प्रकार अपनी चलाया करते थे। सर्वोच्च न्यायालय का फैसला क्रिकेट मैच में अपनाई डीआरए (डिसीजन रिव्यू सिस्टम) व्यवस्था सरीखा है, जिसमें तीसरा अम्पायर मैदान वाले अम्पायर के फैसले को उलट सकता है, बिना गेंद दुबारा डलवाए।

यह कहना कि मसीह तो एक आसान निशाना था, इसके बावजूद अदालत के जज़्बे की तारीफ बनती है न कि कम करके आंकना। मसीह का अनुचित व्यवहार ही उसको निशाने पर ले आया। जिस पर न्यायाधीश खफा हुए, साफ है उसने यह करके अपनी छवि खलनायक जैसी बना डाली। अदालती फैसले को अपरिहार्य दंडाधिकारी की तरह लिया जाए, जैसे कि कर्मफल का दंड देने वाली ग्रीक देवी नेमेसिस, जो नियम-स्थापित पवित्र प्रक्रिया को बिगाड़ने का प्रयास करने वालों का इंतजार करती है।

हालांकि गूढ़ प्रश्न है कि क्या मसीह ने यह सब अपने तौर पर किया होगा। क्या अन्य भी थे जिन्होंने उसे ऐसा करने को कहा और यकीन दिलवाया कि यदि कुछ समय के लिए अपनी अंतरात्मा को दबा दे तो बहुत बड़ा फल मिलेगा। और इस दुर्भाग्यपूर्ण मामले में यही बात गहन पड़ताल का आह्वान करती है। जिस ढंग से 'विजयी' घोषित किए मेयर ने कुर्सी संभाली, वह कठिनाई से पाई सफलता पर तात्क्षणिक खुशी के सदका न होकर उस साजिश का हिस्सा था, जिसकी पटकथा पहले लिखी जा चुकी थी और अगले दृश्य के अभिनय में केवल इशारे मिलने की देर थी। चुनाव अधिकारी तो केवल एक निमित्त मात्र था।आदि से अंत तक, यह पूर्ण रूप से चालबाजी थी। पहले एक घटिया साजिश फिर उसका अनाड़ी क्रियान्वयन, तत्पश्चात तुरत-फुरत कब्जा करना। आगे, कुछ पार्षदों का पाला बदलना और मेयर का त्यागपत्र देना तेजी से बदलते परिदृश्य में एक चतुर किंतु अधकचरा जुगाड़ रहा। अवश्य इस सबके पीछे कोई 'मास्टरमाइंड' जरूर काम कर रहा था। परंतु अंतत: न्यायालय ने हथौड़ा चलाकर इस नाटक का पटाक्षेप कर दिया।

नये मेयर को गद्दी से उतारने के लिए उसके खिलाफ अविश्वास प्रस्ताव लाने की संभावना बनी हुई है, यदि कानूनन इजाज़त हो। यह पैंतरा सफल हो भी सकता है, क्योंकि 'मंडी' में हरेक 'चीज़' की एक कीमत है। यह होने पर, लोकतंत्र का आगे चीरचरण होगा। कोई हैरानी नहीं इस अलोकतांत्रिक प्रयास से सत्ता हासिल करने पर सत्तारूढ़ दल की ओर से मुंह से एक शब्द तक न निकला। जो कुछ सर्वोच्च न्यायलय ने मसीह वाले मामले में किया है वह न्याय को तार्किक निर्णय तक पहुंचाने जैसा है। यह कुछ ऐसा है कि न्यायाधीशों ने दिन-दहाड़े डकैती होना पाया और एक लुटेरा पकड़ा गया, तब मजबूरन डकैतों ने लूटा माल लौटाना तय किया। यहां इस मामले में, छीना गया सबसे कीमती सरमाया यानी लोकतंत्र, जिसके लिए देश ने लंबी लड़ाई लड़ी है। सर्वोच्च अदालत द्वारा लोकतांत्रिक व्यवस्था को पुन: स्थापित करने के साथ, क्या भारत के लोग इसे सहेजकर रखने के लिए अपनी ओर से कुछ योगदान करेंगे क्या यह सिद्धांत इलेक्ट्राल बॉन्ड्स पर भी लागू होगा, यक्ष प्रश्न है।

बाइबल के पात्रों डेविड और गोलिएथ की तरह न तो यह लड़ाई पहली है न ही अंतिम। वहां तो डेविड ने कंकड़ एवं गुलेल और सहायक बने ईश्वर का साथ पाकर गोलिएथ को हरा दिया था। किंतु आज के प्रत्येक डेविड को यदि जीतने की आशा रखनी है, तो प्रतिबद्धतापूर्ण साहस और अदालतों के सतत और बिना शर्त साथ की जरूरत है। कोई हैरानी नहीं न्यायाधीश को माई लॉर्ड (मेरा भगवान) कहा जाता है।

आजकल

पटरी पर गठबंधन की गाड़ी

गठबंधन टूटने के आशंकाओं के बीच आखिरकार लोकसभा चुनाव में आई.एन.डी.आई.ए. के लिए यूपी और दिल्ली में सहमति बन गई है। यूपी में सपा और कांग्रेस साथ मिलकर मैदान में उतरेंगी, तो दिल्ली, हरियाणा और गुजरात में आप का साथ मिला है। बनने से पहले ही बिखर जाने की अटकलों और आशंकाओं के बीच आई.एन.डी.आई.ए. के लिए पहले यूपी और फिर दिल्ली से कुछ अच्छी खबर आई। समाजवादी पार्टी और आम आदमी पार्टी से सीट बंटवारे पर बनी सहमति ने एक बार फिर विपक्षी दलों और उनसे जुड़े कार्यकर्ताओं को यह दावा करने का मौका दे दिया है कि 2024 की लड़ाई अभी खत्म नहीं हुई है और वे सत्तारूढ़ गठबंधन के लिए कड़ी चुनौती पेश करने का माद्दा अभी भी रखते हैं। पिछले कुछ समय से आई.एन.डी.आई.ए. को एक के बाद एक कई झटके लगे। पहले तो कांग्रेस ने ही पिछले साल दिसंबर के विधानसभा चुनावों में अच्छे प्रदर्शन की उम्मीद में गठबंधन से जुड़ी बातचीत को ठंडे बस्ते में डाल दिया। बातचीत शुरू भी हुई तो नेताओं में न तो पहले जैसा जोश दिखा और न वैसी केमिस्ट्री महसूस हुई। फिर गठबंधन के प्रस्ताव पर सबसे बढ़-चढ़कर काम करने वाले नीतीश कुमार ही उसे छोड़ गए। यूपी में आरएलडी के जयंत चौधरी भी आई.एन.डी.आई.ए. का हाथ थामते-थामते ह्न में शामिल हो गए। इस बीच छोटे-बड़े नेताओं के कांग्रेस छोड़ने का सिलसिला भी तेज हुआ। महाराष्ट्र के पूर्व मुख्यमंत्री अशोक चव्हाण का नाम खास तौर पर चर्चित रहा।

इसे चाहे इन नेताओं का व्यक्तिगत अवसरवाद कहें या बीजेपी और एनडीए नेतृत्व की सक्रियता, इतना तय है कि इन नेताओं को कांग्रेस का भविष्य खास अच्छा नहीं दिख रहा। कांग्रेस नेता राहुल गांधी ने भारत जोड़ो यात्रा की अगली कड़ी के रूप में भारत जोड़ो न्याय यात्रा शुरू की और इससे कांग्रेस ने उम्मीदें भी काफी लगा रखी हैं, लेकिन अब तक की स्थितियों को देखते हुए इसे पिछली यात्रा जैसी कामयाब नहीं कहा जा सकता। इससे जिस तरह की ऊर्जा पैदा होने की उम्मीद की जा रही थी, उसमें एक बड़ी बाधा आई.एन.डी.आई.ए. से जुड़े दलों में एकजुटता लाने में हुई देरी भी साबित हुई। इस वजह से विपक्षी एकजुटता के समर्थकों में समय पर उत्साह का संचार नहीं हो पाया। वैसे कहा जा सकता है कि अभी भी वक्त हाथ से पूरी तरह निकला नहीं है। जिस तरह से समाजवादी पार्टी और आम आदमी पार्टी के साथ यूपी और दिल्ली के बाहर भी सीटों के बंटवारे पर सहमति बनी है, उसे देखकर लगता है कि दोनों पक्ष खुलेपन का परिचय दे रहे हैं।

दाल-रोटी के नेपथ्य में जाने के खतरे

डॉ. राजेन्द्र प्रसाद शर्मा

नेशनल सैंपल सर्वे ऑफिस की हालिया रिपोर्ट में रहन-सहन और खान-पान के प्रति देशवासियों में जबरदस्त बदलाव सामने आया है। जहां एक ओर 1999-00 से 2022-23 के दौरान खाने-पीने की वस्तुओं पर खर्च में तेजी से कमी देखी जा रही है, वहीं खाने-पीने से इतर अन्य पर खर्च में बड़ा उछाल सामने आ रहा है। मजे की बात यह है कि यह बदलाव केवल शहरी क्षेत्रों में हो, ऐसा नहीं हैं अपितु ग्रामीण क्षेत्रों में बदलाव की बयार लगभग समान ही नहीं अपितु शहरी क्षेत्र से अधिक ही है। ऐसा नहीं है कि इस दौरान प्रति व्यक्ति व्यय में कमी आई हो अपितु प्रति व्यक्ति व्यय में लगातार बढ़ोतरी ही देखने को मिल रही है। यह रुझान तेजी से बदलती प्राथमिकताओं को भी स्पष्ट करता है। मजे की बात यह है कि खाद्यान्न (सिरियल्स) के उपयोग में कमी आई हैं वहीं अखाद्य सामग्री की खरीद में बढ़ोतरी देखने को मिल रही है।

दरअसल यह बदलाव बदलते परिदृश्य को भी स्पष्ट करता है। इस रिपोर्ट का विश्लेषण किया जाए तो खाने-पीने की वस्तुओं में चाहे शहरी क्षेत्र हो या ग्रामीण दोनों ही जगह ब्रेवरेज यानी की पेय पदार्थों और प्रोसेस्ड फूड यानी की डिब्बा बंद खाद्य पदार्थों का उपयोग बढ़ा है। इन्हें भी शामिल कर लिया जाए तो भी खान-पान पर होने वाला व्यय 1999-00 की तुलना में 2022-23 आते-आते बहुत कम हो गया है वहीं अखाद्य वस्तुओं पर शहरी और ग्रामीण क्षेत्र के लोगों द्वारा दिल खोलकर पैसा खर्च किया जा रहा है।

लगता है जैसे अब लोगों की समान रूप से प्राथमिकताएं बदल गई हैं। बल्कि यह कहना अधिक युक्तिसंगत होगा कि अब रहन-सहन और सुख-सुविधाओं के उपयोग में गांव किसी तरह से भी शहरों से पीछे नहीं रह रहे है। बल्कि रिपोर्ट से तो यही उभर कर आता है कि मॉल संस्कृति के बावजूद अब उत्पादकों को ग्रामीण क्षेत्र में अच्छा बाजार मिलने लगा है। इसे अर्थव्यवस्था के लिए शुभ संकेत भी माना जा सकता है। सर्वे से स्पष्ट हो रहा है कि अब गांव, गांव नहीं रहे। वह शहरों से कहीं पीछे नहीं रहना चाहते। यही कारण है कि उत्पादकों द्वारा अब ग्रामीण क्षेत्र को भी टारगेट बनाकर रणनीति तैयार की जाने लगी है।

देश में दो दशक में ही आए इस बदलाव को आंकड़ों की भाषा में समझें तो ग्रामीण क्षेत्र में 1999-00 में खाद्य सामग्री पर 59.40 प्रतिशत राशि व्यय की जा रही थी, वहीं 2022-23 आते-आते यह घटकर 46.38 प्रतिशत ही रह गई। खास बात यह कि इसमें तेजी से बदलाव खासतौर से पिछले एक दशक में देखा गया है। इसी तरह से शहरी क्षेत्र की बात की जाए तो 1999-00 में खाद्यान्न पर 48.06 प्रतिशत राशि खर्च की जाती थी जो 2022-23 में 39.17 प्रतिशत रह गई। सबसे खास बात यह कि सिरियल्स में जो कमी आई है भले ही उसके पीछे विशेषज्ञ एक कारण सरकार द्वारा खाद्य सामग्री का नि:शुल्क व कम कीमत पर वितरण मान रहे हैं पर यह गले उतरने वाली बात इसलिए नहीं है कि खाद्य सुरक्षा के तहत एक सीमा तक ही नि:शुल्क खाद्य सामग्री का वितरण हो रहा है।

हां, कुछ हद तक खाने-पीने के बदलाव की बात कही जाती है पर यह भी सही नहीं मानी जा सकती क्योंकि डिब्बाबंद खाद्य पदार्थों के उपयोग में उतनी बढ़ोतरी नहीं दिख रही जितनी सिरियल्स के उपयोग में कमी आई है। लगता है जैसे सिरियल्स से लोगों का मोहभंग होता जा रहा है, पर इसे भविष्य के लिए शुभ संकेत भी नहीं माना जा सकता। 1999-00 में ग्रामीण क्षेत्र में सिरियल्स व सिरियल्स सबस्ट्यूट पर 22.23 प्रतिशत राशि व्यय होती थी जो दो दशक में ही कम होते-होते इकाई की संख्या यानी कि 6.92 प्रतिशत पर आ गई है। यह तो गांवों की स्थिति है। शहरों में भी सिरियल्स व सिरियल्स सबस्ट्यूट पर होने वाला व्यय 12.39 से कम होकर 4.51 प्रतिशत रह गया है। दूसरी और खाद्य सामग्री में ही ब्रेवरेज और प्रोसेस्ड फूड को लिया जाए तो इसका उपयोग शहरी क्षेत्र में 6.35 प्रतिशत से बढ़कर 10.64 प्रतिशत और ग्रामीण क्षेत्र में 4.19 प्रतिशत से बढ़कर 9.62 प्रतिशत हो गया है। दूसरी और अखाद्य वस्तुओं की खरीद की बात की जाए तो ग्रामीण क्षेत्र में 40.60 प्रतिशत से बढ़कर 53.62 प्रतिशत हो गई तो शहरी क्षेत्र में 51.94 प्रतिशत से बढ़कर 60.83 प्रतिशत तक पहुंच गया है।

इसमें भी ज्यादा उछाल डूरेबल आइटम्स में देखा जा रहा है। लोगों की रुचि वाहन, एसी, फ्रीज, ओवन, फ्लेट्स या मकान आदि की और रुझान बढ़ा है। तस्वीर का दूसरा पहलू यह है कि कपड़े-जूते और इसी तरह की निजी उपयोग की वस्तुओं पर व्यय में कमी आई है।

दरअसल यह दो दशक में देशवासियों के बदलते मिजाज की तस्वीर है। पर खाने-पीने की वस्तुओं के उपयोग में कमी आना, डिब्बाबंद व पेयपदार्थों के उपयोग में बढ़ोतरी चिंता का विषय होनी चाहिए। इसी तरह से डूरेबल आइटम्स के लिए जिस तरह से पर्सनल और अन्य तरह के लोन लेने व क्रेडिट कार्ड के उपयोग के कारण कर्ज के बोझ तले दबने को भी उचित नहीं कहा जा सकता। देखा जाए तो इनसे आज की पीढ़ी व आज के लोग तनाव, कुंठा, प्रतिस्पर्धा आदि को भी बिना किसी तरह का दाम चुकाए प्राप्त करने लगे है। एक समय था जब दो टाइम की दाल-रोटी पहली आवश्यकता व प्राथमिकता होती थी वह दो दशक में ही नेपथ्य में चली गई लगती है। सर्वे से यह तो साफ हो गया है कि आज ग्रामीण और शहरी क्षेत्र लगभग एक रफ्तार से एक ही दिशा में बढ़ रहे हैं और गांव और शहर का भेद कम हो रहा है पर खाने-पीने की आदतों में बदलाव भविष्य की चिंता का कारण बन सकता है।